International Journal of Information Movement Vol.I Issue VI (October 2016)
Website: ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 68-72

21वीं शताब्दी के प्रथम दशक की महिला लेखिकाओं के उपन्यासों में आर्थिक परिवेष

सुखविन्द्र कौर
शोधछात्र, पीएच.डी. (हिन्दी)
हिन्दी भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

1.0 प्रस्तावना :

वर्तमान युग अर्थ की महत्ता का युग है। अर्थ के बिना मनुष्य का जीवन निरर्थक बन जाता है, क्योंकि अर्थ ही वह धुरी है, जिसके आधार पर व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र का सामाजिक स्तर निर्धारित किया जाता है। यही कारण है कि आज मनुष्य की दृष्टि अर्थोन्मुखी और अर्थ केन्द्रित हो गई है। एक युग था जब भारत वर्ष आर्थिक दृष्टि से संपन्न था। गाँव का जीवन अधिकतर आत्मनिर्भर था। किन्तु विदेषी आक्रमणकारियों ने लगातार आक्रमण कर यहाँ की संपत्ति की लूट की। मुस्लिम शासकों के पतन के पष्चात् हिन्दुस्तान में अंग्रेजों ने अपनी सत्ता प्रस्थापित की। लगभग डेढ़ सौ वर्ष की अवधि में उन्होने यहाँ की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था तहस–नहस कर दी।

दीर्घकालीन संघर्ष के पष्चात सन् 1947 को हमारे देष को स्वतंत्रता मिली। लेकिन तब तक देष की आर्थिक स्थिति पूर्णतः जर्जर हो चुकी थी। आर्थिक गिरावट के कारण देष में मंहगाई, बेरोजगारी, निर्धनता आदि अनेक सामाजिक विसंगतियाँ निमित हो गई। मार्क्स ने समाज के प्रत्येक परिवर्तन के मूल में आर्थिक परिस्थितियों को ही महत्वपूर्ण माना है। स्वतंत्रता के बाद देष में सामाजिक, राजनीतिक एवं औद्योगिक परिवर्तन होने लगे। इसमें नए वर्गों का उदय होने लगा। एक ओर पूँजीवादी तथा सामंतवादी वर्ग का उदय हुआ तो दूसरी ओर कृषक, मजदूर और साम्यवादी वर्ग का निर्माण हुआ। आर्थिक विषमता के कारण इन वर्गों में संघर्ष बढ़ता गया।

21वीं शताब्दी के प्रथम दषक की महिला लेखिकाओं ने अपने ग्रामीण उपन्यासों में ग्रामीण आर्थिक परिवेष के अनेक पहलुओं को उजागर किया है। वर्तमान ग्रामीण समाज में आर्थिक दृष्टि से मुख्य तीन वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं। इन वर्गों का विष्लेषण निम्न प्रकार से है–

1.1 जमींदार वर्ग :

भारतीय ग्रामीण समाज में अनेक वर्षों से जमींदार वर्ग का अस्तित्व महत्वपूर्ण रहा है। अग्रेंजों के शासन काल से देष में जमींदारी प्रथा का प्रचलन हुआ। अंग्रेजी सरकार जमींदारों के माध्यम से किसानों से लगान वसूल करती थी तथा जमींदार किसानों से मनचाहा लगान वसूल कर धनी बन गए। धीरे–धीरे यह वर्ग अपने धन की गरिमा एवं प्रतिष्ठा के मद में अहंकारी होकर उच्छृंखल होता गया। निम्न वर्ग के प्रति इनका व्यवहार अवहेलनापूर्ण था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद धीरे–धीरे जमींदारी प्रथा का अन्त होने लगा। 21वीं शताब्दी में तो नई विचार–दृष्टि ने इस वर्ग का अस्तित्व ही मिटा दिया। 21वीं शताब्दी के प्रथम दषक के उपन्यास पासंग और आंगनपाखी में जमींदार वर्ग के कम होते रूतबे का दर्षाया गया है। इस संदर्भ में उपन्यासों के निम्न उद्धरण हैं–''सभी तो याद है, इन्सान क्या कभी कुछ भूलता है? अंग्रेज कितनी बुरी तरह लगान वसूलते थे। अंग्रेज जमींदार को कसता था और जमींदार किसान पर अत्याचार करता था। कोड़े से मार खाते तक देखा है। हमारे दादा बताते थे कि लगान वसूली का चलन अकबर बादषाह के वक्तों से ही शुरू हुआ था। अबकर के नौ रत्नों में एक टोड़रमल थे। उन्होंने ही अकबर बादषाह को सलाह दी थी, कि जमींदारों से रेवन्यू वसूला जाए, इससे वह दबाव में रहेंगे और शाही खजाने की आमद बढ़ेगी। अकबर के हुक्म से लगान लगाई गई बाद में इस कानून को अंग्रेजों ने अपनाकर उसका गलत इस्तेमाल किया। इसी के सहारे उन्होंने तमाम उपद्रव, अत्याचार और आंतक करके किसानों को भयभीत किया था। सख्ती से लगानबंदी का काम करते थे। सभी जमींदारों पर अत्याचार किया था।''[1]

''सो तो है। खेती तो माँ होती है, पुरखा होती है, सबको पालती पोसती है। दिलषाद को कुछ काम धन्धा करना चाहिए। आखिर कब तक बाप का खाता रहेगा। कभी उसे भेजना, मैं समझा दूँगी। मुसलमानों को तो अब काम की फिक्र करना चाहिए। पाकिस्तान बनते ही तो जमींदारियाँ चली गई। पुराने वक्त की तरह अब काम नहीं चलेगा। दोगले लोग अब सर उठा रहे हैं। पहले जमींदारी थी तो दबदबा था, लोग डरते थे। वक्त के साथ इन्सान को बदलना चाहिए। निकम्मापन छोड़ना चाहिए। जमींदारी गई तो देखो लोगों ने कैसे मेरी कितनी जमींने दबा दी। अब किसी में आँख का पानी नहीं रहा। अब तो सुना है सीलिंग का कानून भी आने वाला है।''[2]

अगनपाखी उपन्यास में भी भुवन के जेठ कुँवर अजय सिंह बहुत बड़े जमींदार हैं–''कुँवर किन लोगों में उठते–बैठते हैं, जानते थे पिताजी। एम.एल.एल., एम.पी. और मंत्री लोग। जिस सरकार का सत्ता में बोलबाला है, उसके स्तम्भों को थामने वाले कुँवर हमारे बारे में इस कदर हितकारी बातें सोचते हैं, पिता जी का माथा क्यों न झुक जाता?''[3]

वस्तुतः जैसे–जैसे जमींदारी प्रथा नष्ट हो रही है वैसे–वैसे ही जमींदारों का सदियों से कायम रूतबा भी धीरे–धीरे कम हो रहा है। लोग अब जमींदारों से उतना नहीं डरते जितना अंग्रेजों के समय डरते थे। जमींदारों के पास अब केवल नाम की ही जमींदारियाँ रह गयी हैं क्योंकि आजकल पढ़े–लिखे नौकरी पेषा लोग उनकी बराबरी करने लगे हैं। अगनपाखी उपन्यास में राजेष जैसा पढ़ा–लिखा युवक कुँवर अजय सिंह के बारे में कहता है–''सालों का गुमान रह ही कितना गया है? जमींदारी छांट रहे हैं, जमींदारी कब की हवा हुई, जमींदार तबाह हो गए, यह पता है भाई लोगों को। वे लोगों की गिनती करते रहते हैं, गाँव के लोग गिनते नहीं। घर में ही भले रायफल बंदूकें चटका लें।''[4]

अतः जमींदार वर्ग का अस्तित्व अब नाममात्र ही बचा है।

1.2 .किसान वर्ग :

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि है। भारत कृषि प्रधान देष है। कृषि के चारों ओर ही सम्पूर्ण ग्रामीण आर्थिक और सामाजिक संरचना केन्द्रित है। भारतीय जीवन का यथार्थ स्वरूप गाँवों में मिलता है। गाँवों में रहने वाले अधिकतर लोग कृषि से संबंध रखते हैं। कृषि करने वाले ग्रामीण कृषक कहलाते हैं। कृषि भारतीय कृषक जीवन के आर्थिक ढाँचे का आधार है। भारतीय कृषक अत्यधिक परिश्रमी होने के बावजूद भी आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है। गरीबी, बेरोजगारी, अषिक्षा, भ्रष्टाचार, रिष्वतखोरी, ऋणग्रस्ता तथा प्राकृतिक कारक आदि किसान की आर्थिक दुर्दषा के प्रमुख कारण है। 21वीं शताब्दी के प्रथम दषक की महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों, अगनपाखी, त्रियाहठ, पासंग, पानी पर लकीर और षिगाफ में भारतीय कृषकों की समस्याओं को दर्षाया है। उपन्यासों के निम्न उद्धरण इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं :–

''मुझे याद है कि नाना के परिवार में रोटियों के लाले पड़े थे। वे दूसरों की खेती जोतते थे। कर्जा उठाते, ब्याज पटाते हुए अपनी जिंदगी काट रहे थे तो क्या अनहोनी कर रहे थे? गाँव के अधिकतर किसानों की यही हालत है। अपनी इस हालात को सुधारने के लिए नाना ने अजीत मामा को पढ़ाया था। कम जोत वाले और भूमिहीन किसानों की तरह सोचा था कि बेटे की नौकरी एकमुष्त रकम मिलने का साधन बनेगी। क्या इसी आषा में किसान का बेटा दोनोंपन से नहीं जाता? न नौकरी मिले, न खेती कर सके?'' कहते–कहते देवेष तमतमा सा गया।''[5]

गाँव के ज्यादातर छोटे किसान अपने परिवार का पालन पोषण करने के लिए दूसरों की खेती जोतते हैं, कर्जा उठाकर अपने बच्चों को पढ़ाते हैं, ताकि आमदनी का कोई जरिया बन सके। लेकिन भ्रष्टाचार के कारण न नौकरी मिल पाती है, न ही वह खेती कर सकता है। गाँव में जमीन के बंटवारे को लेकर या पैसे को लेकर कई बार भाई–भाई में भी झगड़े हो जाते हैं, त्रियाहठ उपन्यास में मीरा के पिता बरजोर सिंह और उसके चचेरे भाई गजराज सिंह का संपति को लेकर विवाद हो जाता है–''बिन्नू, उसके भी अपने जमाने रहे हैं। जिस नदिया में तुमने नाव डूबने का सपना देखा है, उसमें ही कभी उनकी नावें चलती थी। बड़ा ढेका था ननदोई जी का। तुम्हारे गजराज काका से इसी बात पर ठनाठनी हो गई थी कि उन्होंने सांझेदारी में कपट किया। ब्यौपार अलग हो गए तो दोनों जने दुष्मनी पर आ गए। फिर तो उनको लगे कि नावों की कमाई से आया पइसा भइया के घर नहीं दुष्मन के घर जा रहा है, बिन्नू, प्रीत–प्यार और भाईचारा सब पइसा के गुलाम हैं।''[6]

गाँव के किसान परिवारों में कई बार सांझेदारी में चल रही खेती में भी अनेक विवाद पैदा हो जाते है। त्रियाहठ उपन्यास में उर्वषी के प्रति सर्वदमन की मृत्यु के बाद जेठ शत्रुजीत सिंह अपने भाई की खेती को सांझेदारी में चलाकर उसका हिस्सा हड़पना चाहता था। अगनपाखी उपन्यास में भी कुँवर अजय सिंह भाई की मौत के बाद विधवा भाभी को उसका हक न देकर उसे मारने की साजिष रचता है। भुवन अपनी चतुराई और पुजारी राजेष की सहायता से बच जाती है। यही नहीं, वह अपने जमीनी हक के लिए कचहरी में हलफनामा भी देती है–

''मैं, भुवनमोहिनी, पत्नी स्वर्गीय विजय सिंह वल्द स्वर्गीय दुरजय सिंह, निवासी ग्राम विराटा, जिला झाँसी, यह दावा करती हूँ कि मैं अपने पति के हिस्से की चल–अचल सम्पति की हकदार हूँ। मुझे इतला मिली है कि मेरे पति के साथ मुझे भी मृतक दिखाया गया है और मेरे जेठ कुँवर अजय सिंह ने अपने अकेले का हक बरकरार रखा है। क्योंकि स्व. विजय सिंह की कोई संतान नहीं। कचहरी से अर्ज है कि अपने पति की जायदाद का हक मुझे सौंपा जाए। मैं कुँवर अजय सिंह की हकदारी पर सख्त एतराज करती हूँ।

बकलम खुद–भुवनमोहिनी''[7]

परिवारों में संपति संबंधी विवाद भी किसानों को आर्थिक रूप से कमजोर बनाते है। ऐसे मामलों में अदालत स्त्री के पक्ष में ही निर्णय देती, क्योंकि स्त्री पति की संपति की पूर्ण हकदार होती है।

प्राकृतिक आपदाओं के कारण कई बार किसानों को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतिषय बाढ़ के कारण फसल का नष्ट होना, पषुओं के चारे की समस्या, दोबारा खेत जोतकर बुआई करना जैसी अनेक समस्याओं से किसान को जूझना पड़ता है।

पानी पर लकीर उपन्यास में बिहार राज्य में कोसी नदी के किनारे स्थित भरनापुर गाँव के लोगों को बाढ़ की समस्या का सामना करना पड़ता है–''वह एक सुन्दर भोर थी। खेतों में धान काटकर फैले हुए थे। ओस से भोगी धान की बालियों को सूखने तक फैला दिया जाता है फिर बोझा बाँधकर खलिहान लाया जाता है। इस बार अतिषय पानी बाढ़ के वक्त आ जाने से धान की फसल मारी गयी। खाने को चावल नहीं मिलेगा यह मनुष्य का कष्ट है पर धान के नहीं होने से पषु–चारा का कष्ट बढ़ गया था। पुआल की कमी हो गयी थी। लोगों ने अपने–अपने खेत जोतकर गेहूँ की बुआई करनी शुरू कर दी थी। गेहूँ तैयार होने पर मवेषियों के लिए दाना–भूसा का प्रबन्ध हो जायेगा। तब तक खरीद–फरोख्त कर पुआल लाया जाये यही नियति है। इन दिनों पुआल की बैलगाड़ी की बटमारी होने लगी है। कही बियाबान में रात हो गयी तो लठियल लोग बक्कू के पुआल लूट लेते, सो रात से पहले किसी मित्र गाँव में ठौर ढूँढ़ लेते गाड़ीवान।''[8]

षिगाफ़ उपन्यास में भी कष्मीर के ग्रामीण किसानों को अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जंग में सब कुछ छिन जाने से दो वक्त का खाना भी मुष्किल से मिलता है–''पहले गाँव खुषहाल था खूबसूरत दिखता था। गाँव के लोग अच्छे थे। अब भी भले हैं। मगर जब लोगों ने हथियार उठा लिए तो दो जून का मिलने वाला खाना और जिन्दगी का सुकून भी चला गया।''[9]

आंतकवाद के कारण किसानों की जमींने छिन गई, अब वे मजदूर बनकर जीवन जीने को मजबूर हैं। अमिता जब जुलेखा के गाँव जाती है, तो वहाँ के लोगों की हालत देखकर दुखी होती है। वह जुलेखा की अम्मी से पूछती है–''आप खेती करती हैं.....? यह सब्जी बगैरह.....''

''अब दूसरों की जमीन पर खेती करते हैं। कभी अपनी जमीन भी थी, चली गई। कभी ज़ाफरान के खेतों में फूल चुन लेते थे। जंग में सब उजड़ गया। अब वहाँ कुछ नहीं होता।''

''आपके पति?''

''जब खेती का मौसम न हो तो मेरे मियाँ बढ़ईगीरी करते हैं। नावें, खेलने के बल्ले, ताबूत बनाया करते हैं। एक वक्त था बच्ची, जब इन्हें ताबूत बनाने से फुरसत नहीं मिलती थी। वो गैरमामूली वक्त था। ताबूत बनाने का काम कम ही नहीं होता था। हमने खेत उस बार खाली छोड़ दिये थे। ताबूत बनाने के तमाम मौसम उसे फुर्सत नहीं मिली थी। हर तरह के औरतों, बच्चों के छोटे ताबूत, मुर्दों के बड़े ताबूत। अल्लाह–अल्लाह करते जाते भीगी आँखों से औजार चलाते। वो पैसा भी बुरा लगता था, मगर पेट के लिए। अब राहत है। नावें बनाते हैं, संजीदा रहते हैं। बल्ले बनाते हैं, खुष रहते हैं।''[10]

अतः आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए ग्रामीण किसानों का यथार्थ चित्रण इन उपन्यासों में हुआ है।

1.3 मजदूर वर्ग :

आजादी के बाद देष दो वर्गों में विभाजित हो गया–षोषक और शोषित। औद्योगिक विकास ने पूँजीवाद को जन्म दिया, जिससे देष की अर्थ–व्यवस्था केन्द्रित होने लगी। पूँजीपति और उद्योगपति गरीब जनता का मनमाने ढंग से शोषण करने लगे। जिससे आर्थिक विषमता में वृद्धि होने लगी। ग्रामीण भूमिपति और ठेकेदार मजदूरों से परिश्रम अधिक करवाते हैं और वेतन कम देते हैं। आज के ग्रामीण मजदूर ऋणग्रस्त, निर्धन एवं शोषित हैं। 21वीं शताब्दी के प्रथम दषक की महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में वर्तमान ग्रामीण मजदूरों की आर्थिक दषा का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यासों के निम्न उद्धरण इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं–''अच्छा करती है, हाँ अपने डोकरे को जरा भेज देना कभी, एक गाड़ी लकड़ी खरीदी थी चीर देगा।'' भेज दूँगी बड़ी अम्माँ, आस–पास की मजदूरी करके तो पेट पालता है।''

''इस बार भी पाँच पायली चिरौंजी दे जाना, भूलना मत, तेरे पास से ही तो खरीदती हूँ। दूसरे से कभी खरीदा नहीं।'' ''खरीदना भी मत, मैं पहुँचा जाऊँगी न? तुम्हारे घर और तुम्हारी बहन जैनब छोटी अम्माँ के घर तो हर बरस मैं ही चिरौंजी देती हूँ। पाँच–दस ही घर तो हैं बड़ी अम्माँ जिनके सहारे हमारी गृहस्थी चल जाती है।''

''कभी–कभी तो महीनों नजर नहीं आती, जाने कहाँ चली जाती?''

''अब बोलो क्या करूँ? समय देखकर ही व्यापार करना पड़ता है न बड़ी अम्माँ, अब तो पेट की खातिर खुद ही हटर–हटर करना पड़ता है। तुम लोगों का समय खराब हुआ तो हम लोग भी तो बेकार हुए न? जमींदारी गई तो सारे नौकर हकाल दिए। पहले साल भर का धान रूपया मिल जाता था, गुजर बसर हो जाती थी, अब तो सब खुद करना पड़ता है। तुमने भी खेती बटाई पर उठा दी। अब मौसम देखकर दो पैसा कमाने दौड़ना पड़ता है।''11

जैसे ही जमींदारी प्रथा खत्म हुई, मजदूर वर्ग भी बेरोजगार हो गया। मजदूर वर्ग दिनभर कठिन परिश्रम के बावजूद भी अत्यन्त दरिद्रता में जीवन व्यतीत करता है। अगनपाखी उपन्यास में मैत्रयी पुष्पा ने ग्रामीण मजदूरों का चित्रण किया है। ग्रामीण भूमिपति किसानों को खेती के उठान के समय प्रायः मजदूरों की किल्लत का सामना करना पड़ता है। भूमिपति किसान मजदूरों को कम मजदूरी देकर उनसे मनचाहा कार्य करवाना चाहते हैं। चन्दर के पिता चन्दर को शीतलगढ़ी जाकर मजदूरों की व्यवस्था करने को कहते हैं–

''कान में कोयल नहीं, पिताजी कौवे की तरह काँव–काँव करने लगे– शीतलगढ़ी कौन जाए मजूरों की किल्लत लगी है। हम साँझ तक वहाँ पहुँच जाएँगे। इतंजाम तो करना ही होगा। खेत में फसल झुकी खड़ी है।''[12]

''मैंने क्या कहा। पिताजी ने गौर नहीं किया, या जो तय हो चुका था, उसे टालने देना नहीं चाहते थे, वे अम्मा से बातें करने में मषगूल रहे, मसलन–यहाँ मजूरों की ही कमी नहीं, हँसिया तक नहीं मिल रहे। लुहार साले हँसिया बनाते ही कहाँ है, घन ढालते हैं। फावड़ा ढूँढे नहीं मिलेगा, लोगों को हँसिया फावड़ों से डर लगने लगा है। बढ़ई काम क्यों करें जब पूजा पाठ से ऐष की जिंदगी चल सकती है? बामन बनकर बंबई चले जा रहे हैं। अपनी अम्मा को सन्देष भेज दो मन्नू भूसा बाँधने की पासी (रस्सियों का जाल) भी भेज दें, और हाँ, कटइया अपने गाँव वाले नही; ललितपुर तरफ के चैतुआ भेजें। दूर से आया आदमी डरता है सो मुँह बन्द करके काम करता है। अकडेगा तो यहाँ हिमायत में खड़ा होने वाला कौन है? लड़ने झगड़ने के लिए भी तो संगठन चाहिए।''[13]

आजकल मजदूर वर्ग भी समझदार हो गया है। वो वहीं काम करता है जहाँ उसके परिश्रम की उचित कीमत मिलती है। चन्दर जब मजदूरों की व्यवस्था के लिए अपनी नानी के गाँव शीतलगढ़ी जाता है तो नानी उससे कहती है–''कटनई हो रही होगी, तुम्हारे खेतों में।''

''काटने वाले होते तो मैं यहाँ आता?''

''सो काए?''

''चैतुओं की मर्जी, बेवकूफों की तरह जिधर चाहें, मुँह उठाकर चल देते हैं।''

नानी हँस दी, उनकी ठोड़ी पर गुदने की बिन्दी ज्यादा हँसी, उनके मिस्सी लगे दाँत खूब मुस्काए। मैं खिसिया गया, नानी हमारे यहाँ कटइयों के अकाल पर हँस रही है? या इस बात पर कि मर्दों की खेती खड़ी सूख रही है और वे भुवन के संग खेत उठा रही है।

नानी हँसते–हँसते बोली, ''चैतुआ सिर्री नहीं होते समझदार होते हैं, जानते हैं कि ओरछा बरूआसागर तरफ के लोग बड़े सूम होते हैं। कटाई का आठवाँ हिस्सा तक नहीं देते। किसान की परख मजूर ही करता है।''[14]

अतः समग्रतः हम कह सकते हैं कि आज का मजदूर वर्ग जमींदारों और किसानों द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण के प्रति चेतन्न हो गया है। अब वह अपने द्वारा किए परिश्रम का उचित मूल्य पाने की कामना करता है और इसके लिए संघर्षरत भी है।

1.4 संदर्भ सूची :

1. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 194
2. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 132
3. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी पृ. 128

4. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी पृ. 132
5. मैत्रेयी पुष्पा, त्रियाहठ पृ. 24–25
6. मैत्रेयी पुष्पा, त्रियाहठ पृ. 27
7. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी पृ. 7
8. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 46
9. मनीषा कुलश्रेष्ठ षिगाफ़ पृ. 202
10. मनीषा कुलश्रेष्ठ षिगाफ़ पृ. 202–203
11. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 143
12. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी पृ. 40
13. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी पृ. 41
14. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी पृ. 46